International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 20-04-2021, Accepted: 07-05-2021, Published: 25-05-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 32-36

प्रदूषण और आदिवासी समुदाय (आदिवासी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. राठोड पुंडलिक

हिंदी विभाग, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी, कर्नाटक, भारत

सारांश

भारत के आदिवासी मुख्यत: उन क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ प्राकृतिक संसाधनों यथा धात्विक, अधात्विक खनिजों का भंडार एवं दोहन की व्यापक सम्भावनाएँ हैं। देश के सर्वांगिन विकास हेतु संसाधनों का दोहन आवश्यक है। इसलिए इन क्षेत्रों में व्यापक रूप से उत्खनन और अन्य गतिविधियाँ होती हैं किंतु प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित, असंधारणीय अत्यधिक दोहन के परिणाम्स्वरूप वन्य परितंत्रों का ह्रास, नदी, नालो तथा अन्य जल-स्त्रोतों की शुद्धता में कमी और पर्यावरण निम्नीकरण होता हैं क्योकि संसाधन दोहन प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों का उत्सरजन होता है। प्रदुषक सम्पूर्ण क्षेत्र को हर स्तर पर प्रदूषित करता है। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदुषण, कृषि प्रदूषण होता है।

दोहन प्रक्रिया के उप-उत्पादक अपशिष्ट प्रदूषक जब पूरे क्षेत्र को प्रदूषित करते हैं तब इस प्रदूषण का नकारत्मक प्रभाव उन क्षेत्रों में निवासित आदिवासी समुदायों, वन्य-प्राणियों तथा पेड-पौधों पर पड़ता है। प्रदूषण के इस नकारात्मक प्रभाव के कारण आदिवासी समाज विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं और असाध्य बीमारियों का शिकार हो रहा है।

मूल शब्द: प्रदूषक, प्रदूषण, पर्यावरण निम्नीकरण, जलाशय, जन-समुदाय, अपशिष्ट प्रदूषक, उत्खनन प्रक्रिया, रेडियोधर्मी पदार्थ, अकार्बनिक रसायन, कार्बनिक योगिक, रेडियोधर्मी समस्थानिक, उत्खनन अग्रीमेंट, असाध्य बीमारी।

प्रस्तावना

आज संपूर्ण विश्व में विकास की अंधी दौड़ चल पडी है कि आज का मानव न तो पर्यावरण का ध्यान रख रहा है और न ही अपने सम्भावित भविष्य का। इसी अत्यधिक अनियंत्रित विकास और प्राकृतिक संसाधनों का अनैतिक बंदरबाट प्रक्रिया ने मनुष्य के स्वास्थ्य को खतरे में डाल दिया है। तीव्र नगरीकरण, औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन के परिणामस्वरूप पर्यावरण में प्रदूषण का स्तर बढ रहा है। प्रदूषण पर्यावरण के अजैविक घटकों (वायु, जल, मृदा) में होनेवाला नकारात्मक परिवर्तन है जो मनुष्य के स्वास्थ्य एवं जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

भारत की राष्ट्रीय विकास नीति के अंतर्गत प्राकृतिक संसाधन दोहन नीति के फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। राष्ट्रीय, बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा आदिवासी बहुल क्षेत्रों में अनियंत्रित, असंधारणीय दोहन प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्सर्जित प्रदूषकों का आदिवासी समाज पर गम्भीर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी क्षेत्र प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों से ग्रस्थ हैं। पर्यावरण के अजैविक घटक रेडियोधर्मी पदार्थों से प्रदुषित हो रहे हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादक कम्पनियों द्वारा अग्रीमेंट का उचित रूप से पालन नहीं किया जाता है। उत्सर्जित प्रदूषकों का व्यवस्थित निस्तारण नहीं किया जाता है। प्रदूषण की इस समस्या से वहाँ निवासित आदिवासी समाज विभिन्न प्रकार की असाध्य बीमारियों से पीडित है। कुछ बीमारियाँ तो ऐसी हैं जिनका आज तक वैज्ञानिकों द्वारा भी शोध नहीं लगाया गया है।

प्रदुषण उन परिवर्तनों का परिणाम है जो पौधों, प्राणियों और मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। “पर्यावरण के विभिन्न अवयवों की निश्चित संरचना होती है। इन अवयवों में अन्य दूसरे प्रकार के पदार्थ जब मिल जाते हैं, तब उनकी मौलिक संरचना बदल जाती है और इसी को प्रदुषण कहते हैं।”[1]

ऐसा तब होता है जब मानव जाति को प्राप्त होने वाले दीर्घकालीन पर्यावरण लाभों की कीमत पर केवल अल्पकालिक आर्थिक लाभ प्राप्त किए जाते हैं।

प्रायः कहा जाता है कि प्रदुषण का सर्वाधिक प्रभाव नगरीय जनसमुदाय पर पड़ता है और जहाँ वन, नदी, नाले, जलाशय तथा प्राकृतिक आवरण होता है वहाँ प्रदूषण का प्रभाव कम होता है। इस दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत, हिमालयी प्रदेश, पश्चिमी घाट आदि क्षेत्रों में यह तथ्य उचित है किंतु झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्र में स्थिति विपरित है । इन क्षेत्रों में नगरों की तुलना में कई अधिक प्रदूषण फैल रहा है जो जीव-जंतु तथा वननिवासियों पर विपरित प्रभाव डाल रहा है । फलतः लाखों जनजातीय लोग आज विभिन्न बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इन क्षेत्रों में प्रदुषण के प्रमुख तत्वों जैसे क्षरणीय या अर्धक्षरणीय प्रदुषक,धीरे-धीरे क्षरणीय या स्थायी प्रदुषक और अक्षरणीय प्रदूषण इन तीनों श्रेणियों के प्रदूषण प्रमुख हैं। औद्योगिक निपटान का कुप्रबंधन, विकिरण अथवा रेडियो सक्रिय पदार्थों का अपशिष्ट, उत्खनन की अनुचित प्रक्रिया आदि प्रमुख क्रिया-कलापों को कारणीभूत ठहराया जा सकता है।

जल प्रदूषण

हम जल को प्रायः गंभीरता से नहीं लेते हैं किंतु जल के अभाव में जीवन असंभव है अर्थात् जल ही जीवन है। "एक अध्ययन के अनुसार पृथ्वी पर 71 प्रतिशत भाग जल का है। इस जल का 97 प्रतिशत समुद्रों में है जो सिंचाई अथवा पीने के योग्य नहीं है । बल्कि 30 प्रतिशत ताजा जल है । इसमें से 2.997 प्रतिशत ध्रुवों की बर्फ में या हिमानियों के रूप में है। इस पृथ्वी के कुल जल को केवल 0.003 प्रतिशत ही हमें मिट्टी की नमी, भूजल, वाष्प तथा झीलों, नदी नालों और नमभूमियों के रूप में उपलब्ध है ।"[2] इस तथ्य से हम समझ सकते हैं कि जल हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण और दुर्लभ है।

आम तौर पर जल प्रदूषणों की अनेक श्रणियाँ होती हैं, रोगों के कारक जैसे जीवीणु, विषाणु, सूक्ष्म जीवों और पर-जीवी कृषि उर्वरक जो घरेलू नालियों जैसे मानव और पशुओं के अशोधित अपशिष्ट के साथ जल में पहुँचते हैं और जल को प्रदूषित कर देते हैं । यह प्रक्रिया नगरों एवं महानगरों में अधिक है किंतु जहाँ तक आदिवासी क्षेत्र की बात है, जहाँ प्रमुख जैविक अपशिष्ट, अजैव पादप प्रदुषण, जल में विलेय अकार्बनिक रसायनों, अनेक प्रकार के कार्बनिक यौगिक, निलंबित कणों की पर्ते, रेडियोधर्मी समस्थानिक आदि हैं । ये सभी प्रकार के प्रदूषक कारखाने उत्खनन तथा अपशिष्ट द्वारा निर्मित होते हैं। उत्खनन अग्रीमेंट की पहली शर्त यह होती है कि उत्खनन के पश्चात खोदे हुए गड्डों को उचित तरीके से पुनः भर दिया जाए किंतु ऐसा नहीं होता है। "अब एग्रीमेंट की पहली शर्त है बॉक्साइट निकालकर गड्डा भरना है, तो बीसों साल से क्यों नहीं हो रहा यह काम? हमें तो लगता है कि जानबूझकर सरकार भी मटिया रही है । चाहती है, पाट पर आबादी जितना जल्दी खत्म हो बॉक्साइट निकालने में उतनी ही आसानी होगी।"[3] उत्खनन के पश्चात यदि उन गड्डों को नहीं भरा गया तो उत्खनन प्रक्रिया में निकलने वाली रैडॉन गैस हमेशा निकलती रहती है जो एक खतरनाक प्रदूषक है और जब वर्षाकाल आता है तब उन गड्डो में वर्षा जल भर जाता है और वह गड्डों का सारा जल प्रदूषित हो जाता है । इस प्रकार उत्खनन क्षेत्र में छोटे-छोटे विष के गड्डे फैल जाते हैं और यही विष धीरे-धीरे भौमजल को भी दूषित करता है।

भौमजल का प्रवाह धीमा और हलचल रहित होता है । फलतः भौमजल प्रदूषण का फैलाव भी धीमा होता है किंतु एक बार प्रदूषित हो जाने के बाद इसे शुद्ध करना बहुत ही खर्चीला होता है । "आपका मतलब है कि ये जो खनिज (यूरेनियम) अपने साथ खतरनाक रेडियोधर्मी पदार्थों को बाहर लाते हैं ।...इसके पश्चात गिरने वाला बारिश का पानी रिसकर जमीन के अंदर जाता है तो भूमिगत जलस्त्रोतों को दूषित करता है और कुछ बहकर आसपास के तालाबों और नदी-नालों के पानी को भी जहरीला बनाता है ।"[4] और इन जलसस्त्रोतों से किसान अपनी कृषि करता है और अनाज पैदा करता है। तो उपजी फसलें भी जहरीली हो जाती हैं और जब दूषित जल अन्य जलस्त्रोतों से सिंचाई की जाती है तो मृदा प्रदूषण भी होता है। "इस रेडियोधर्मी पदार्थ से दूषित पानी को जब सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है तो उससे मिट्टी प्रदूषित होती है।"[5] मृदा प्रदूषण के कई कारणों में यह एक कारक हुआ। अधिकांश भारतीय नदियाँ प्रदूषण की चपेट में हैं किंतु आदिवासी क्षेत्र से प्रवाहित होने वाली कोयल कारो, महानदी, हुगली, नर्मदा जैसी नदियों के प्रदूषण का कारण अन्य नदियों से भिन्न है । अन्य नदियाँ नगरों के दूषित पानी के कारण प्रदूषित हो रही हैं। "जहाँ से जहर खाएँ व्यक्ति के होठों के कोने से निकलते फेन सी यूरेनियम कचरे के पानी की पतली धारा आकर एक नाले के मार्फत स्थानीय नदी में गिर रही होती । उसी नदी में, जो आगे जाकर झारखंड की एक प्रमुख नदी सुवर्णरेखा से मिलती थी और बंगाल की खाड़ी तक जाते-जाते करीब दस हजार वर्ग कि.मी तक के लाखों लोगों की प्यास बुझाती थी, जिसके जल से लोग अपने खेतों में अनाज और फसल उगाते थे। नहाते-धोते

थे।"[6] तात्पर्य यह है कि नदी द्रोणी के सभी जीव-जंतु प्रदुषण की चपेट में आ जाते हैं। फलतः अनेक दुष्परिणाम होते हैं ।

अपशिष्ट-प्रदूषक

किसी अपशिष्ट को घातक तब कहा जाता है जब उसमें चार विशेषताओं में कोई एक दिखाई पड़े । ये विशेषताएँ हैं भौतिक या रासायनिक विषैलेपन के कारण क्रियाशीलता, ज्वलनशीलता और संक्षारकता इनके संक्रामक या रेडियोधर्मी अपशिष्टों को भी घातक अपशिष्टों की श्रेणी में रखा जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में (मध्य भारत उच्च भूमि में) सभी प्रकार के अपशिष्टों की समस्या है क्योंकि इसी क्षेत्र में सर्वाधिक औद्योगिकरण हुआ है तथा उत्खनन भी हो रहा है। औद्योगिकरण से निकला कचरा व निर्मित कलपूर्जो के कारण जल, मृदा, वायु तथा समस्त पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, क्योंकि अपशिष्ट प्रदूषकों का अनुचित प्रबंधन है। अग्रीमेंट के अनुसार प्रबंधन नहीं किया जाता है ।

मध्य भारत के कुछ (अधिकांशतः) क्षेत्रों में यूरेनियम कोयला, बॉक्साइट उत्खनन होते हैं। फलतः अनेक विषैली गैस तथा अपशिष्ट (ठोस एवं तरल) निर्मित होते हैं, जिनके अनुचित प्रबंधन के कारण प्रदूषण के भयानक परिणाम सामने आ रहे हैं। "इन कचरों को जब विशेष तालाबों में या डैमों में डालकर छोड़ दिया जाता है तो उससे दूर-दूर तक पर्यावरण दूषित होता है।" [7] इन अपशिष्ट में सर्वाधिक खतरनाक जानलेवा यूरेनियम अपशिष्ट है । "जानते हो यूरेनियम प्रकृति में पायी जाने वाली सबसे भारी धातु तो है ही, यह एक ऐसा अस्थिर रेडियोधर्मी तत्व भी है जो धीरे-धीरे ऊर्जा की किरणों को बिखरते हुए नष्ट हो जाता है । नष्ट होने की यह अवधि हमारी कल्पना से भी ज्यादा लंबी है । प्राकृतिक यूरेनियम का अर्धजीवन ही करीब साढ़े चार खरब (बिलियन) वर्ष है ।"[8] यह अपशिष्ट नष्ट होने के दौरान भी कई अनेक रेडियोधर्मी तत्वों को मुक्त करता रहता है। कहने का तात्पर्य यह भी कि सभी अपशिष्टों में यूरेनियम अपशिष्ट सर्वाधिक खतरनाक है और वह आज के भारत में सर्वाधिक इसी आदिवासी क्षेत्र में फैल रहा है। यदि इस अपशिष्ट का प्रबंधन नहीं हुआ तो आने वाले कुछ वर्षों, में इस क्षेत्र के आदिवासियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा । आज भी गंभीर प्रभाव उस क्षेत्र में दिखाई देने लगा है किंतु सरकारें चुपचाप देख रही हैं।

वायु-प्रदूषण

भारत में सर्वाधिक वायु प्रदूषण नगरीय क्षेत्र में होता है क्योंकि वायु में मुक्त होने वाली मोटर गाड़ियों का धुआँ वहीं अधिक होता है किंतु इस प्रदूषण से आदिवासी भी पूर्णतः मुक्त नहीं है। (मध्य भारत के) इन क्षेत्रों में मोटर गाड़ियाँ नहीं है किंतु उनसे भी अधिक खतरनाक रैडॉन गैस मुक्त हो रही है जो मोटरगाड़ियों से कई गुणा अधिक वायु प्रदूषण करती है । मान लिया जाए कि यहाँ पेड़-पौधे अधिक हैं जो प्रदूषण को सोखने का कार्य करते हैं किंतु यह काम भी वनों द्वारा तभी संभव है जब वह प्राकृतिक रूप से विविधता पूर्ण हो किंतु कई उपन्यासों में संदर्भ आया है कि सरकारें विविधतापूर्ण वनों को काटकर समान पेड़ लगवा रही है । सरकार केवल धन कमाना चाहती है, फिर धन कमाने हेतु कितनी भी मूल्यवान वस्तु क्यों न हो उसे बेच रही है । कहने का तात्पर्य यह है कि वनों का व्यावसायीकरण के फलस्वरूप वायु प्रदूषण को कम करने की क्षमता वनों में कम होती जा रही है ।

मध्य भारत (आदिवासी क्षेत्र) में कई प्रकार के प्रदूषक हैं जो वायु प्रदूषण में भूमिका निभाते हैं। कारखानों से निकला धुआँ "धीरे-धीरे बड़ी संख्या में जंगल के पेड़-पौधे नष्ट होने लगे। धुएँ से होने वाले प्रदूषण के कारण जीव-जंतुओं का नाश होने लगा। सभी प्राणी परेशान हो उठे।"[9] धुआँ के अतिरिक्त अन्य खदानों से कई प्रदूषक मुक्त होते रहते हैं जो वायु प्रदूषक हैं और उन खदानों में काम करने वाले हजारों मजदूर आज इसके प्रभाव में हैं। "बहुत बड़े पैमाने पर जंगल का नाश करने वाली... वातावरण को दूषित करने वाली लोहा खदानों तथा मिलों में...।"[10]

आदिवासी समुदाय को ज्ञात नहीं है कि इन खदानों कारखानों तथा यूरेनियम अपशिषटों का परिणाम क्या होता है। नीति निर्माता और सरकार अवश्य जानती है किंतु मौन है। वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को नहीं कह सकते हैं कि अग्रीमेंट के अनुसार ही कार्य हो क्योंकि उन्होंने कई अरबों रुपये पहले ही लेकर अपना सर्वस्व समर्पित कर चुके हैं किंतु पर्यावरण प्रदूषण केवल आदिवासियों की समस्या नहीं है, हालाँकि आज सर्वाधिक प्रभावित यह समाज है बल्कि यह विश्व मानवता की समस्या है। इन क्षेत्रों में प्रदूषण के जितने भी कारक हैं सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। जिस पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। आदिवासियों पर प्रदूषण का प्रभाव तथा उनसे उत्पन समस्याओं की पड़ताल भी समीचिन होगा।

आदिवासी समाज पर प्रदूषण का प्रभाव

आदिवासी समाज अपने वनोत्पादन तथा विस्थापन की समस्या का ही सामना नहीं कर रहा है बल्कि पर्यावरण प्रदूषण

के दुष्परिणामों से भी जूझ रहा है। इन क्षेत्रों में अनेक नई-नई बीमारियों का होना उसी प्रदूषण का परिणाम है किंतु यह परम्परागत समाज मानता है कि "मरंग गोंड़ा में हो रही तमाम अजीबोगरीब बीमारियों की जडों में कहीं-न-कहीं डाइनों का ही हाथ है।"[11] यह समाज समझ नहीं पा रहा है वास्तविक कारण क्या है? प्रदूषण के फलस्वरूप विकलांगता, मंदबुद्धि होना, अपाहिज शिशु जन्म, कैंसर जैसी असाध्य बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है और ऐसे में स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं के अभाव के कारण स्थिति और भी गंभीर हो रही है। सीसा, पारा और आरसेनिक जैसे घातक पदार्थ। लोगों और पशुओं द्वारा ग्रहण किया गया अधिकांश हड्डियों में जमा हो जाता है। सीसा रक्त की लाल कोशिकाओं की ऑक्सिजन लाने-ले जाने की क्षमता को प्रभावित करता है और उनका जीवन काल कम करता है। इस प्रकार अनेक कारण व दुष्प्रभाव गिनाए जा सकते हैं।

प्रदूषण के कारण बूढ़ों, टी. बी. अपाहिज, थायराइड, दमा, कैंसर, त्वचा के रोग बांझपन जैसी अनेक बीमारियाँ होती हैं। जिसका विश्लेषण पहले किया जा चुका है। इसके साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण से पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। जिसके फलस्वरूप असमय अकाल पड़ते हैं। अकाल कई प्रकार के हो सकते हैं। सूखा, बाढ़, बीमारियाँ, खाद्यान्न विषाक्त के कारण महामारी आदि।

आदिवासी समाज की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर होती है। जिसके कारण वे अकाल जैसी चुनौतियों का सामना करने में असमर्थ होते हैं। उनके गाँव से लाश पर लाश निकलती रहती हैं। लोग आपसी मेलभगत को भूल जाते हैं। सब कोई अपनी भूख हेतु तड़प रहा होता है। "घर-घर हल पड़े थे, बैल खड़े थे, खेतों में जल कहाँ था ? भय था कि कहीं कुएँ भी न सूख जाएँ।"[12] ऐसी स्थिति में सरकार की सहायता की आशा अभी भी नहीं छोड़ा है किंतु पूरा गाँव जर-जर हो रहा है। आखिर नायक आनंद अपनी क्षमता के अनुसार मदद करता है। "हमें करंजिया की सहायता के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"[13] यह रचनाकार की रचना प्रक्रिया है कि उपन्यास में ऐसा पात्र गढ़ने की कोशिश जो आदिवासियों का उद्धार करे किंतु वास्तविक समाज में ऐसा कौन है जो इनकी संवेदनाओं को समझ सकता है। वास्तविकता में तो अकाल उनके "हाथ से भोजन ही नहीं, थाली लोटा ही छिन रहा है।"[14] कहने का तात्पर्य यह है कि सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं के मूल में अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण प्रदूषण और पर्यावरण असंतुलन ही होता है। प्रदूषण से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता है। फलस्वरूप अनेक आपदाओं का जन्म होता है। इन आपदाओं से मात्र आदिवासी समाज ही नहीं बल्कि अन्य समाज भी अछूता नहीं है। अतः इन सारी समस्याओं पर पुनर्विचार एवं पुनर्विश्लेषण की आवश्यकता है और एक साझे प्रयास की आवश्यकता है। भले ही मुआवजा लेकर कंपनी से कुछ लोगों का भला हुआ हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न ! हमारी आने वाली पीढ़ियाँ तो बीमार होती रहेंगी ! हमारी विकलांगता हमारी असामायिक मौत। कंपनी चाहे कितना ही मुआवजा क्यों ने दे दे, बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर स्वास्थ्य, हमारी स्वच्छ हवा, जो हम गरीबों की एकमात्र पूँजी थी, तो वापस नहीं ला सकती न ! जब इन तमाम मुसीबतों की जड़े ये खदानें, ये मिलें हैं तो क्यों न इन्हें ही बंद करने की हम माँग करें। अथवा कोई वैकल्पिक राह खोजें। जहरीलें साँप को उसके बिल में ही रहने देना ही बुद्धिमानी है। बाहर लाना नहीं। यदि राष्ट्र विकास हेतु यह सब करना समय के अनुसार आवश्यक है तो पीड़ित वर्ग के लिए योग्य व उचित विकल्प प्रदान करने की शर्त सर्वप्रथम प्राथमिक मुद्दों में होनी चाहिए। यह भी मुक्ति का एक अन्य मार्ग हो सकता है।

निष्कर्ष

आदिवासी उपन्यासों में चित्रित समाज पर्यावरणीय निम्नीकरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र ह्रास के विभिन्न नकारात्मक प्रभावों का सामना कर रहा है। आज आदिवासी समाज का यही यथार्थ जीवन है। प्राकृतिक संसाधन दोहन प्रक्रिया जो अनियंत्रित एवं असंधारणीय है, से विभिन्न प्रदूषकों द्वारा आदिवासी बहुल क्षेत्रों में विभिन्न जलस्त्रोतों जैसे नदी, नालों, झरनों को दूषित कर रहे हैं। इस दूषित जल का उपयोग आदिवासी समाज करता है। फलत: विभिन्न बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। इन क्षत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, समाज की दयनीय आर्थिक स्थिति, अशिक्षा तथा जागरूकता में कमी के कारण आदिवासियों की रहस्यमयी मृत्यु हो रही हैं। अत: राष्ट्रीय विकास हेतु प्राकृतिक संसाधनों का दोहन आवश्यक है किंतु वह नियंत्रित एवं संधारणीय हो, दोहन नीति प्रगतिशील हो तथा क्षेत्रों में निवासित आदिवासी समाज के विस्थापन का उचित पुनर्स्थापन हो, उन क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त हो तथा संसाधन दोहन में आदिवासी समाज का हिस्सा भी होना आवश्यक है क्योंकि वे प्राचीन काल से उन क्षेत्रों में निवास करते आये हैं। राष्ट्रीय, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दोहन प्रक्रिया अग्रीमेंट का शक्ति से पालन करवाना आवश्यक

है। विभिन्न प्रकार के उप-उत्पाद प्रदूषकों का नियमित एवं उचित निस्तारण होना भी आवश्यक है। इन सारे प्रयासों के माध्यम से ही आदिवासी समाज पर प्रदूषकों के गम्भीर प्रभावों को कम किया जा सकता है तथा विभिन्न सुविधाओं की आपूर्ति के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया में सम्मिलित किया जा सकता है जो राष्ट्रीय जनजातीय विकास नीति का भी मुख्य लक्ष्य है।

संदर्भ सूची

1. एम.ए. गोयल, पर्यावरण संरक्षन की महत्ता- पृ- 84
2. कुरूक्षेत्र पत्रिका, अप्रैल-2009- पृ- 26
3. रनेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता– पृ- 14
4. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ- 191
5. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ- 192
6. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-183
7. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-193
8. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-159
9. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-129
10. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-130
11. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ- पृ-124
12. राजेंद्र अवस्थी, रथ के पहिए- पृ- 175
13. राजेंद्र अवस्थी, रथ के पहिए- पृ- 178
14. राजेंद्र अवस्थी, रथ के पहिए- पृ- 178